BAOU Education for All
A++
॥ चैतन्य ॥
CHAITANYA
ISSN : 2582 2802
A Refereed and Peer - Reviewed International e-Journal of Humanities and Social Sciences
by School of Humanities and Social Sciences
Dr. Babasaheb Ambedkar Open University, Ahmedabad

आधुनिक हिंदी नाटको की रंगमंचीय स्थिति

प्रा.पारुलबेन परमार,
आसिस्टेंट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग,
Baou, अहमदाबाद .

- **सारांश:**

आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच की शुरुआत 20 वीं सदी से मानी जाती हैं। भारतेंदु युग से लेकर प्रसाद युग,प्रसाद युग से लेकर प्रसादोत्तर युग,और प्रसादोत्तर युग से आज तक हिंदी नाटक और रंगमंच में कई बदलाव आये। इन सारे बदलावों को अपने में समाकर हिंदी रंगमंच आज एक बड़ा फलक बन गया है। आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच को आगे बढ़ाने में की सारी संस्थाओ ने अपना योगदान दिया हैं। इन संस्थाओं के द्वारा हिंदी नाटक रंगमंच पर खेSSले गये हैं, और सफल भी हुए हैं। जिससे आधुनिक हिंदी नाटको को रंगमंच पर एक नया आयाम मिला हैं।

- **चाबी रूप शब्द :**

नाटक और रंगमंच, हिंदी नाटक, हिंदी रंगमंच,रंगमंचीय संस्थाएँ

आधुनिक हिंदी नाटको की रंगमंचीय स्थिति

आधुनिक हिंदी नाटको में बीसवी शताब्दी का हिंदी नाटक और रंगमंच अपने-आप में बहुत बड़ा फलक हैं। 19 वीं सदी के अंत और 20 वीं सदी की शुरुआत में आधुनिक नाटक मुख्य से एक स्वाभाविक और यथार्थवादी प्रस्तुति की और केन्द्रित थे। आम आदमी, दैनिक जीवन,सामाजिक समस्या, स्वास्थ्य और आर्थिक समस्या आधुनिक रंगमंच पर अच्छी तरह से प्रकट हुई।

21 वीं शताब्दी के नाटकों में सजीवता लाने के लिए नाटक के तत्वाधान और रंगमंचीय प्रस्तुति की ओर विशेष ध्यान दिया है। जिसके नाटकों के प्रति जनमानस का दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ है।अभिनय का गम्भीर अध्ययन करने के उपरान्त रंगमंच के प्रति एक सम्पूर्ण और खुली दृष्टि रखकर हिन्दी नाटक और रंगमंच के लेखन अभिनय कला निर्देशन मंच परिकल्पना, प्रकाश व्यवस्था आदि सभी संसाधनों का प्रयोग के साथ उनमें नवीन अत्याधुनिक उपकरणों का प्रयोग तथा नवीन प्रयोगशील दृष्टि अपनाकर हिन्दी नाट्य परम्परा को सशक्त और पोषकता प्रदान करने का प्रयास किया है। रंगमंचीय सफलता की इससे बड़ी उपलब्धियाँ क्या होगी कि आज अन्य भाषाओं के नाटक भी राष्ट्रीय स्तर पर अपने को प्रतिष्ठित करने के लिए हिन्दी रंगमंच का आश्रय लेने को बाध्य हो रहे हैं।

21 वीं शताब्दी में महत्त्वपूर्ण नाटकों को लिया गया हैं। इनमें अधिकतर नाटक रंगमंच पर खेले जा चुके है। 21 वीं सदी का नाटककार मानवीय संवेदना के बहुविध रूपों को रंगमंचीय दृष्टि से पचाकर शिल्प दृष्टि से परम्परित और नवीन नाट्य शैलियों का अद्‌भुत सम्मिश्रण कर रंगमंच को नयी दिशा दे रहा है। जीवन के एकान्त क्षणों में जब मानव जीवन में फैले हुए परम सत्य का दर्शन करने के लिये अपनी आकुल भावना का

अभिसार करता है और आराधना की विभिन्न भूमिकाओं में आत्मदर्शन करता हुआ जब वह विश्व दृश्य बन जाता है, तब उसको कहा जाता है 'कलाकार'। ये कलाकार अतीत के चित्रों को अपनी भावनाओं की तूलिका से चित्रित करता हुआ अपने भावों, विचारों और अनुरागों के द्वारा मानवता की सजीव प्रतिमा स्थापित करना चाहता है। वह अपने व्यापार जगत का समस्त हर्ष, विषाद, उत्थान-पतन, सुख दुःख, अभाव, पूर्णता आदि को लेकर निर्माण कार्य में व्यस्त रहता है। उसकी चिन्तन धारा परम से लेकर अहम तक और अहम से लेकर परम तक निरन्तर प्रवाहित रहती है। इसीलिये उसके स्वप्न का संसार बड़ा ही सुखद एवं मनोरम होता है। कलाकार की समस्त कृति के मूल में उसकी चेतना और उसकी अनुभूति ही प्रधान होती है। समस्त शास्त्रों एवं कलाओं से युक्त नाटक की रचना इसी चेतना और अनुभूति का परिणाम है।

- **रंगमंच का अर्थ :**

रंगमंच (थियेटर) वो स्थान है जहाँ नृत्य, नाटक, खेल आदि खेले जाते हैं। रंगमंच शब्द 'रंग' और 'मंच' दो शब्दों के मेल से बना हैं। 'रंग' शब्द का उपयोग इसीलिए होता हैं कि द्रश्य को आकर्षक बनाने के लिए दीवारों, छतों और पर्दों पर विविध प्रकार की चित्रकारी की जाती है और अभिनेताओ की वेशभूषा तथा सज्जा में भी विविध रंगो का प्रयोग होता हैं। 'मंच' इसलिए प्रयुक्त हुआ है कि दर्शको की सुविधा के लिए रंगमंच का तल फर्श से कुछ ऊँचा रहता है। दर्शको के बैठने के स्थान को प्रेक्षागार और रंगमंच सहित समग्र भवन को प्रेक्षागृह, रंगशाला, नाट्यशाला, नृत्यशाला कहते है। पश्चिमी देशों में इसे थियेटर या ऑपेरा नाम दिया जाता है।

रंगमंच जीवन की घटनाओं को सजीव रूप में उपस्थित करता हैं। हिंदी में रंगमंच के सन्दर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुए कई विद्वानों ने अलग अलग व्याख्याएँ की हैं। जैसे -

नेमीचन्द्र जैन ने लिखा हैं कि "...रंगमंच कलात्मक अभिव्यक्ति का ऐसा माध्यम हैं जिसमे मनोरंजन का अंश अन्य कलाओ की तुलना में अपेक्षाकृत सबसे अधिक हैं।"

डॉ.लक्ष्मीनारायणलाल ने रंगमंच को एक 'अमूर्त सत्य' माना हैं। रंगमंच पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा हैं कि – "रंगमंच एक भाव हैं - एक अनुभूति हैं,जिसकी अपनी असीम व्यापकता और गहराई हैं।"

उपरोक्त सन्दर्भ में हम कह सकते हैं कि रंगमंच में सभी कलाओं का समावेश हो जाता हैं। जिसके द्वारा हमारा मनोरंजन तो होता ही हैं परन्तु इससे कई भावों की अनुभूति होती हैं और मनुष्य उसमें एकाकार हो जाता हैं।

वेसे तो आधुनिक नाटको की शुरुआत तो भारतेंदु युग से हो जाती हैं। जिसमे अनुदित और मौलिक नाटको का बहुत विकास हुआ और ये नाटक रंगमंच पर खेले जाने पर बहुत सफल भी रहे। उसके बाद आता है द्विवेदी युग। जिसमें नाटको के विकास के बारे में जानेंगे।

- **द्विवेदी युगीन हिन्दी नाटक रंगमंच** :

द्विवेदी युग एवं छायावाद युग राष्ट्रिय आन्दोलन के विकास के चरण थे जिसमे राष्ट्रीय संस्कृति एवं मर्यादा पर अधिक बल होने के कारण पारसी रंगमंच की व्यावसायिक पध्दतियो की तीव्र भर्त्सना की गयी। लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में "हिंदी ने अतिशुध्धि एवं अर्थ-भावना के कारण पारसी रंगमंच को हिंदी का अपना नही माना और रंगमंच दर्शक, रंगमंच-नाटक, विषयवस्तु-नाटक, पाठक-दर्शक, व्यवसाय-साहित्य के बीच करीब पचास वर्षो का भयानक अन्तराल पैदा कर दिया।", किन्तु पारसी रंगशैली को जनमानस में इतनी लोकप्रियता प्राप्त थी कि उससे भारतेंदु एवं प्रसाद प्रभावित हुए बिना नही रह सके। दोनों ने पारसी रंगमंच की प्रतिक्रिया में लिखा लेकिन दोनों ने उसकी रंग-शैली, अभिनय-शैली, गीत संगीत के प्रभावों को अनजाने ग्रहण किया हैं।

द्विवेदी युग में नाट्यरचनाओ का जैसे ह्रास होता हुआ नजर आता हैं और मौलिक नाटको की जगह अनुदित नाटको की भरमार हो गई थी। बंगाली नाटको के अनुवाद में रवीन्द्र बाबु के नाटको का अनुवाद

गोपालराम गहमरी ने किया। उनके द्वारा अनुदित नाटको में देशदशा, बभ्रुवाहन, विद्याविनोद, बनवीर और चित्रान्गु हैं। रूपनारायण पांडेय ने गिरीश बाबु के पतिव्रता,द्विजेन्द्रलाल राय के दुर्गादास, उसपार, ताराबाई और शाहजहाँ, रवीबाबू के 'अचला पतन' का और क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद के 'खानजहाँ' का अनुवाद किया। इनके सामाजिक नाटक तत्कालीन परिवेश को सतही ढंग से प्रस्तुत करते हैं इस कल के संस्कृत नाटको के अनुवादकर्ताओं में राय बहादुर लाला सीताराम का प्रमुख स्थान हैं। जिन्होंने नागानन्द, मालतीमाधव, मृच्छकटिक,उत्तररामचरित, मालविकाग्निमित्र और महावीरचरित जैसे संस्कृत नाटको का अनुवाद किया। ज्वालाप्रसाद मिश्र ने 'अभिज्ञानशाकुन्तल', और 'वेणीसंहार' का तथा सत्यनारायण कविरत्न ने 'मालतीमाधव' और 'उत्तररामचरित' का सरस और सरल भाषा में अनुवाद किया । अंग्रजी नाटको में शेक्सपियर के नाटको की धूम रही। पुरोहित गोपीनाथ ने 'रोमियो जूलियट', 'मर्चेंट आव् वेनिश' और 'एज यू लाइक इट' का अनुवाद किया। मथुरा प्रसाद चौधरी ने 'मैकबेथ' का अनुवाद किया।

अनुवाद के साथ साथ थोड़े बहुत मौलिक नाटक हुए जिसमे हरिओंध का 'प्रद्युम्न विजय व्यायोग' एवं 'रुक्मिणी परिणय' उल्लेखनीय हैं। पं.ज्वालाप्रसाद मिश्र ने 'उत्तररामचरित' के आधार पर 'सीतावनवास'लिखा। पं. बलदेवप्रसाद मिश्र ने 'प्रभास मिलन', 'मीराबाईनाटक' और 'लल्लाबाबू' की रचना की। बा.शिवनन्द सहाय ने 'सुदामा नाटक' और देवीप्रसाद पूर्ण ने 'चन्द्रकला मानुकुमार' की रचना की। कुछ अन्य नाटको में अन्तराम पाण्डेय का 'कपटी मुनि नाटक' और चन्द्रकुमार मिश्र का 'हिंदी नाटिका' महत्वपूर्ण हैं।

- **प्रसाद युगीन नाटक रंगमंच :**

भारतेंदु द्वारा शरू की गई नाटक परम्परा को प्रौढ़तम स्तर पर पहोचने का श्रेय जयशंकर प्रसाद को हैं। भारत के स्वर्णिम अतीत को कथावस्तु बनाकर उन्होंने एक ओर तो भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों को महत्व दिया तो दूसरी और ऐतिहासिक पृष्टभूमि का आधार बनाकर अतीत के पट पर वर्तमान का चित्र अंकित किया। उनके नाटको में इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय सहज पाया जाता हैं.जयशंकर प्रसाद ने राष्ट्रीय एकता, समसामयिक समस्याओ को लेकर अंदाजित एक दर्जन नाटको की रचना की हैं। जो इस प्रकार है - सज्जन, कल्याणी, परिणय, प्रायश्चित, करुणालय, राजश्री, विशाखा, अजातशत्रु, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कन्दगुप्त, एक घूँट, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि।

प्रसाद के समक्ष मूल चुनौती हिंदी में गम्भीर ऐतिहासिक सांस्कृतिक नाटकों की अनुपस्थिति की थी। उन्होंने गम्भीर साहित्य नाट्य लेखन पर बल दिया एवं रंगमंच को निर्देशक एवं अभिनेता की प्रतिभा पर छोड़ दिया। उन्होंने साफ तौर पर कहा कि "नाटक के लिए रंगमंच होना चाहिए न कि रंगमंच के लिए नाटक" तब भी, उनके नाटको में पर्याप्त रंगसंकेत उपलब्ध हैं. और उनके नाटक रंगमंच पर बखूबी खेले गये हैं और सफल भी हुए हैं।

अब बात करे प्रसाद युगीन अन्य नाटककार और नाटक की तो उसमे अयोध्यासिंह का 'रुकमणी परिणय', 'प्रद्युम्नविजयव्यायोग', अम्बिका दत्त त्रिपाठी का 'सीय-स्वयंवर नाटक',रामनरेश त्रिपाठी का 'सुभद्रा', 'जयंत', सेठ गोविन्ददास का 'स्नेह या स्वर्ग', 'दू:ख क्यों', गोविन्द वल्लभ पन्त का 'अंगूर की बेटी', 'राजमुकुट', 'सिन्दूर की बिंदी', 'ययाति', उपेन्द्रनाथ अश्क का 'छठा बेटा', 'अंजो दीदी', अंधी गली', उदयशंकर भट्ट का 'मुक्तिपथ', 'विश्वामित्र', 'पार्वती', वृन्दावन लाल वर्मा का 'सेनापति उदल', 'राखी की लाज', 'झाँसी की रानी', मुंशी प्रेमचन्द का 'कर्बला', 'संग्राम', 'प्रेम की वेदी', पाण्डेय बेचेन शर्मा 'उग्र' का 'गंगा का बेटा', 'डिक्टेटर', जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद का 'समर्पण' मैथिलीशरण गुप्त 'अनघ' चन्द्रगुप्त विद्यालंकार 'अशोक', 'रेवा' आदि को देखा जा सकता हैं।

- **प्रसादोत्तर युगीन नाटक-रंगमंच :**

प्रसाद युग के नाटककारो में इस कल में प्रौढ़ता आ गई। पाश्चात्य नाट्य शैली का प्रभाव बढ़ा और नाट्य शिल्प में एक क्रन्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हो गया। अधिकांश नाटक तीन अंक के होने लगे और नाटको के द्रश्य विभाजन में कम ध्यान दिया गया. अधिकांश नाटको में गीतों के प्रयोग पर कम ध्यान दिया गया.इस कल में रंगमंच का विकास भी धीरे-धीरे प्रारम्भ हो गया और परम्परागत नाटको के साथ ही

साहित्यिक नाटको के खेलने की परम्परा प्रारम्भ हो गई। इस काल में सर्वप्रथम हरिकृष्ण प्रेमी और उपेन्द्रनाथ अश्क ने नाटको की रचना की इनके नाटको में रंगमंचीय तत्वों का समावेश क्रमशः होने लगा। किन्तु प्रेमी के नाटको में अब भी गीतों का अधिक प्रयोग था।

इस काल में पौराणिक ऐतिहासिक नाटको की रचना में नाटककारो की रुचि कम होने लगी। जीवन में घटित होने वाली घटनाओ का आधार विषय-वस्तु के तोर पर होने लगा। ऐतिहासिक नाटको में पारिवारिक चित्रण होने लगा। समाज की समस्याओ का समाधान नाटको के द्वारा प्रस्तुत किया जाने लगा। नाटको पर फ्रोइड और युंग का प्रभाव बढ़ ने लगा। सेक्स का समावेश भी नाटको में बढने लगा। चरित्र चित्रण में मनोविज्ञान का सहारा लिया गया और मनोविश्लेणवाद का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। कुछ नाटककारो पर चलचित्र का प्रभाव भी पड़ा।

इस काल में लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'नारद की विणा', 'गरुडध्वज', हरिकृष्ण प्रेमी ने 'स्वप्नभंग', 'आहुति', 'छाया', 'बंधन', मित्र', 'विषपान' आदि नाटको की रचना की। उदयशंकर भट्ट ने 'विक्रमादित्य', 'मनु और मानव', गोविन्दवल्लभ पन्त ने 'अन्त:पुर का छिद्र', 'सिंदूर की बिन्दी', 'विश्वामित्र', 'ययाति' आदि नाटको की रचना की। शेठ गोविन्ददास ने 'कर्ण', 'विकास', 'अमीरी या गरीबी' आदि नाटको की रचना की।

इस तरह से प्रसादोत्तर युग में इन सारे नाटकों की रचना हुई। जिसमे ऐतिहासिकता को हटाकर पारिवारिकता और मनोवैज्ञानिकता का चित्रण हुआ। जिसको रंगमंच पर भी बहुत सफलता प्राप्त हुई।

मोहन राकेश और हिंदी रंगमंच का विकास

मोहन राकेश की रंग – दृष्टि हिंदी रंगमंच के विकास में मील का पत्थर साबित करती है। उन्होंने पश्चिमी रंगमंच से पृथक हिंदी के नए एवं मौलिक रंगमंच की खोज करने का प्रयास किया। जहां पश्चिम का रंगमंच दृश्य – योजना और तकनीकी पर आधारित है। उन्होंने हिंदी के लिए ऐसा रंगमंच बनाने की कोशिश की जो मानव तत्व और शब्द तत्व पर आधारित हो। ताकि कम से कम संसाधनों के साथ संश्लिष्ट से संश्लिष्ट प्रयोग किए जा सके। अपने पहले नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' की भूमिका में उन्होंने हिंदी के मौलिक रंगमंच के उद्देश्य की चर्चा की है। वह लिखते हैं - "हिंदी रंगमंच को हिंदी भाषी प्रदेश की सांस्कृतिक मूर्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना होगा। रंगों और राशियों के हमारे विवेक को व्यक्त करना होगा। हमारे जीवन के राग रंग को प्रस्तुत करने के लिए हमारे संदेशों और स्तंभों को अभिव्यक्त करने के लिए जिस रंगमंच की आवश्यकता है वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं दीन होगा।" अपनी इसी रंग – दृष्टि को मोहन राकेश ने अपने सभी नाटकों 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' तथा 'आधे अधूरे' में प्रयुक्त किया। यह रंग – दृष्टि मंच पर इतनी अधिक सफल रही कि इसमें हिंदी नाटक रंगमंच के नए मुहावरे गढ़ दिए।

सिर्फ एक दृश्य के माध्यम से नाटक के सभी अंगो की प्रस्तुति, मंचीय संवादों के अतिरिक्त नेपथ्य से बहुत सी ध्वनियों का सार्थक प्रयोग, अभिनेताओं की आंगिक चेष्टाओं के माध्यम से अकथनीय को भी कह देने की ताकत, जैसी विशेषताओं ने मोहन राकेश के रंगमंचीय प्रयासों को अभूतपूर्व सफलता दिलाई।

हिंदी रंगमंच के विकास में संस्थाओं का योगदान :

हिंदी नाटक खेले तो जा ही रहे थे, लेकिन इन नाटको को रंगमंच पर लाने के लिए कोई माध्यम की जरूरत होती हैं। वो ऐसी संस्थाए होती हैं जो इन नाटको को खेलने के लिए अपना योगदान देती हैं। इन संस्थाओं का स्थान नाटक के विकास में महत्वपूर्ण होता हैं। जिसको हम कभी नही भूल सकते। अगर ऐसी संस्थाए नही होती तो हम नाटको का विकास सायद नही देख पाते। हमारे हिंदी साहित्य में भी नाटकों को सफल बनाने में ऐसी कई संस्थाओं का योगदान रहा हैं।

हिंदी नाटको को रंगमंच पर सफल बनाने में भारतेंदु युग से आज तक कई सारी संस्थाओं ने अपना योगदान दिया हैं। जिसके बारे में जानकारी प्राप्त करना जरूरी हैं। जो निम्नलिखित हैं-

❖ **भारतेंदु नाटक मंडली :**

बीसवीं सदी के हिंदी रंगमंच के विकास में 'भारतेंदु नाटक मंडली' (1906) की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। इस मंडली ने लगभग डेढ़ दर्जन नाटको का मंचन किया जिसमे 'सत्य हरीशचंद्र','सुभद्रा हरण', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' प्रमुख हैं। इस नाटक मंडली ने भारतेंदु युगीन नाटको के साथ साथ प्रसाद के नाटको को भी सफलता पूर्वक मंचित कर हिंदी के अपने स्वतंत्र रंगमंच के विकास में मार्ग प्रशस्त किया। जयशंकर प्रसाद के नाटकों को मंचित कर इस संस्था ने सिद्ध किया कि प्रसाद के नाटक पूर्णतः अभिनेय है। आगे चलकर काशी हिंदू विश्वविद्यालय की 'विक्रम परिषद' की स्थापना सन् 1939में हुई थी। इसने नाटकों में स्त्री पात्र के लिए स्त्रियों द्वारा ही अभिनय की परंपरा डाली।

❖ **इप्टा थियेटर :**

इप्टा अर्थात ' इंडियन पीपल थिएटर एसोसिएशन ' का जन्म देश की आजादी की लड़ाई और विश्वव्यापी फासीवाद विरोधी आंदोलन के गर्भ से हुआ था। इसकी स्थापना 25 मई 1943 को मुंबई में हुई थी। इसका नामकरण रोमा रौंला की पुस्तक 'पीपल थिएटर' के आधार पर किया गया था। सन 1943 – 47 के दौरान इप्टा की गतिविधियाँ अत्यधिक लोकप्रिय एवं देशव्यापी होने लगी थी। इन समूह ने प्रगतिशील नाटकों के मंचन पर बल दिया इसने लोक मंच के तत्वों को आत्मसात करते हुए नुक्कड़ नाटकों के मंचन को भी लोकप्रिय बनाया। हिंदी, उर्दू एवं अन्य भारतीय भाषाओं के भी सभी प्रगतिशील एवं वामपंथी लेखक, साहित्यकार, बुद्धिजीवी या तो प्रत्यक्षता इससे जुड़े थे या अप्रत्यक्ष रुप से इसके प्रशंसक थे। आजादी के बाद भी 1960 तक सैकड़ों प्रगतिशील नाटकों का मंचन इप्टा द्वारा किया गया। अली सरदार जाफरी, कैफ़ी आज़मी, राजेंद्र रघुवंशी, रामविलास शर्मा, रांगेय राघव, ख्वाजा अहमद अब्बास, उपेंद्रनाथ अश्क जैसी महान हस्तियां इप्टा से जुडी थी। बलराज साहनी इप्टा के एक महत्वपूर्ण अभिनेता थे। हिंदी रंगमंच को आम जनता के साथ जोड़े रखने में इप्टा की भूमिका ऐतिहासिक मानी जाती है। एक ठहराव के बाद आज भी इप्टा समकालीन रंगमंच पर अपनी सक्रियता बनाए हुए हैं।

❖ **पृथ्वी थिएटर :**

1944 में पृथ्वीराज कपूर ने ' पृथ्वी थिएटर ' की नींव रखी। फिल्म से कमाई अपनी सारी आमदनी उन्होंने इस थिएटर में लगा दी। इसकी स्थापना कर उन्होंने हिंदी रंगमंच को एक राष्ट्रीय स्वरुप प्रदान किया। साथ ही इप्टा के साथ सहयोग करते हुए हिंदी रंगमंच की सामाजिक भूमिका को भी पहचाना और स्पष्ट किया। प्रख्यात जन कवि और नाटककार शील पृथ्वी थिएटर को देश का राष्ट्रीय हिंदी रंगमंच मानते हुए पृथ्वीराज कपूर को सांस्कृतिक योद्धा बताया। 16 वर्ष तक पृथ्वी थिएटर ने पूरे भारत में नाटक मंचित किए। इसमें कुल 8 नाटक थे – 'शकुंतला' , 'दीवार' , 'पठान' , 'आहुति' , 'कलाकार' , 'पैसा', ' किसान', 'दत्ता'। इनमें कुल रंग सदस्यों की संख्या 80 से 90 थी। इसका वार्षिक बजट तीन से चार लाख रुपए का था और एक लाख रुपये की सहायता सरकार से मिलती थी। इस थियेटर ने देशभर में अपनी प्रस्तुतियाँ दी। पृथ्वी थिएटर पारसी थियेटर के बाद ऐसा नाटक समूह था जो अपने नाट्य दल, रंग – सज्जा तथा रंग उपकरण के साथ उत्तर एवं दक्षिण भारत के सभी क्षेत्रों में यात्रा करता एवं प्रस्तुतियां देता था। इसमें पृथ्वीराज के अतिरिक्त जोहरा सहगल, राज कपूर, शम्मी कपूर, प्रेमनाथ , सुदर्शन सेठी और श्रीराम महत्वपूर्ण कलाकार थे। इनके नाटकों में साम्राज्यवाद विरोध, सामंतवाद विरोध, पूंजीवाद के विकृत रूपों का विरोध, हिंदू – मुस्लिम एकता आदि महत्वपूर्ण विषय होते थे। पृथ्वी थिएटर आज भी सक्रिय है। कपूर परिवार की संजना कपूर पृथ्वी थिएटर का

संचालन आज भी पूरी प्रतिबद्धता एवं व्यवसायिकता के साथ कर रही है। हाल ही में इस समूह में अखिल भारतीय नाट्य उत्सव का आयोजन किया था। मुंबई और दिल्ली में आज भी यह समूह प्रतिवर्ष नाटकों का आयोजन करता है।

❖ राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय

भारत में रंगमंच के विकास को देखते हुए संगीत नाटक अकादमी द्वारा अप्रैल 1959 में 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' की स्थापना की गई। इस विद्यालय ने न सिर्फ देश की महत्वपूर्ण रंग प्रतिभाओं, निर्देशकों, अभिनेताओं को जन्म दिया है, बल्कि हिंदी के नाटकों के मंचन एवं रंगमंच के विकास में 1960 के बाद ऐतिहासिक दायित्व निभाया है। इस विश्वविद्यालय में रंग-मंडल की स्थापना 1964 ईस्वी में की गई जो उसका प्रदर्शन विभाग है। रंग-मंडल ने शैलीगत संगीत से लेकर भारतीय नाट्य की समकालीन कृतियों, अनुवादों और विदेशी भाषाओं के नाटकों के नाट्य रूपांतरण की 200 से अधिक प्रस्तुतियां की हैं। रंग- मंडल के साथ राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय ख्याति के प्रमुख रंग निर्देशकों ने काम किया है। रंग-मंडल भारत के मुख्य शहरों में प्रस्तुतियाँ तो करता ही है इसने विदेशों में भी कई प्रदर्शन किए हैं। इसके प्रथम निर्देशक 'इब्राहिम अल्काजी' ने हिंदी नाटक और रंगमंच को नगण्य और उपेक्षित स्थिति से ऊपर उठाकर बड़े फलक पर प्रतिष्ठित करने का उल्लेखनीय कार्य किया, लेकिन कुछ नाट्य आलोचकों का मानना है कि राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय पर पाश्चात्य रंग शैलियों का प्रभाव कुछ ज्यादा ही है।

भारतीय नाटक की शास्त्रीय परंपरा और हिंदी प्रवेश की लोक परंपराओं की इसके द्वारा कई बार उपेक्षा हुई है। किंतु आधुनिक तकनीकों, प्रकाश एवं ध्वनि के इस्तेमाल में हिंदी रंगमंच के विकास को अंतरराष्ट्रीय स्तर प्रदान किया है। प्रसाद के जिन नाटकों को अनभिनययुक्त नही माना जाता था उनका सफल प्रदर्शन तकनीकी सामग्रियों के कारण संभव हो सका। 1999 इसवी मैं स्वर्ण जयंती के अवसर पर 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' ने भारत रंग – महोत्सव का आयोजन प्रारंभ किया। इस महोत्सव में विभिन्न राज्यों की राष्ट्रीय स्तर की प्रस्तुतियों को 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' के सभी मंच पर प्रस्तुत किया जाता है। इन परिस्थितियों के कारण हिंदी रंगमंच पर अखिल भारतीय स्वरूप के विकास एवं संगठन में मदद मिली है। कहना ना होगा कि सांस्कृतिक औद्योगीकरण एवं कलाओं के तीव्र व्यवसायीकरण के दौर में हिंदी रंगमंच को संभाले एवं संगठित रखने में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की भूमिका ऐतिहासिक है।

❖ रंगमंच की अन्य संस्थाएं :

आजादी के बाद हिंदी रंगमंच का व्यापक विस्तार हुआ प्रशिक्षित रंगकर्मियों के द्वारा प्रशिक्षण शिविरों और नाट्य प्रस्तुतियों ने अनेक नाटक संस्थाओं को जन्म दिया। दिल्ली में 'श्रीराम सेंटर' ने हिंदी रंगमंच के विकास में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। हिंदी रंगमंच के केंद्र दिल्ली के साथ-साथ उत्तर भारत के अन्य शहरों में भी फैलने लगे एवम नई प्रतिबद्धता के आधार पर नई-नई रंगमंच टोलियों का संगठन होने लगा। 'अभियान', 'देशांतर', 'थिएटर यूनिट', 'नया थिएटर', 'अनामिका', 'जननाट्य मंच', 'प्रयोग', 'दर्पण', 'रुपांतर', 'मेघदूत', 'प्रतिध्वनी' आदि अनेक संस्थाओं ने हिंदी रंगमंच की नींव को मजबूत किया। वस्तुतः 1960 – 70 का समय रंगकर्म में क्रांति लहर की तरह था। सर्वश्रेष्ठ हिंदी नाटक इसी समय में रचे गए एवं मंचित हुए। आगामी रंगकर्म की पीठिका इसी समय तैयार हुई और भारतीय भाषाओं के नाट्य अनुवाद हिंदी रंगमंच पर और हिंदी नाटक भारतीय रंगमंच पर प्रस्तुत होने लगे। 'अभियान' और 'देशांतर' ने एक दशक तक हिंदी रंगमंच को कई सार्थक प्रस्तुतियां प्रदान की। इसी समय में बहुत से अभिनेता निर्देशक और विशिष्ट कलात्मक प्रतिभा के कारण प्रतिष्ठित हुए उदाहरण के लिए ओम शिवपुरी, सुधा शिवपुरी, ब.व. क्रांत, मोहन महर्षि, मनोहर सिंह,

रामगोपाल बजाज, सुरेखा सीकरी, जोहरा सहगल आदि ने अभिनय निर्देशन वह नाट्य लेखन के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किए।

हिंदी रंगमंच के विकास में हबीब तनवीर एवं उनकी नाट्य संस्था 'नया थियेटर' की ऐतिहासिक भूमिका है। उन्होंने अपने नाटकों की प्रस्तुति के माध्यम से हिंदी रंगमंच को लोक परंपराओं से संपर्क करते हुए उसे विश्व रंगमंच पर भी प्रतिष्ठा दिलाई। 1967 से 1977 तक का समय हिंदी नाटक और रंगमंच का अत्यंत सक्रियता और गतिविधियों से भरपूर रहा रंगकर्म की तीव्र गति प्रयोगशीलता और उत्साह ने नवीन कृतियों में नवीन संभावनाओं की तलाश की और विभिन्न देशी – विदेशी कृतियों के अनुवादों और उसके नाट्य रूपांतरण पर ध्यान केंद्रित हुआ।बंगाल, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगू, मलयालम के साथ साथ फ्रेंच, जर्मनी, अंग्रेजी, रूसी आदि भाषाओं की श्रेष्ठतम नाट्य कृतियों के अनुवाद तीव्र गति के साथ शुरू हुए जिससे दूसरी भाषाओं की नाटक कृतियां और शैलियां हिंदी नाटक और रंगमंच पर आई।

हिंदी रंगमंच के विकास में नुक्कड़ नाटक की भूमिका

छठे दशक में ही हिंदी रंगमंच को भारतीय रंगमंच में छाए पश्चिमी थिएटर के प्रभावों के विरुद्ध अपनी परंपराओं की ओर लौटने की जरूरत महसूस हुई आम जनता तक और अधिक व्यापक पहुंच सुनिश्चित करने हेतू और एक आम बोलचाल की भाषा में जनसमस्याओं को संबोधित करने की जरूरत ने नुक्कड़ नाटकों के प्रयोग को अपरिहार्य बना दिया। ब्रेख्त और ग्रोटोवस्की के विचारों और पश्चिम के 'स्ट्रीट थिएटर' में भी हिंदी में नुक्कड़ नाटकों के मंचन को प्रेरणा प्रदान की। देशव्यापी परिस्थितियों के बदलने से आम जनता के शोषण में वृद्धि और जन संघर्ष की जो अभिव्यक्ति साहित्य और कलाओं में उभर रही थी उसको नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत करने में नुक्कड़ नाटकों का कोई साथी न था। परंपरागत भारतीय लोक मंचों की सादगी, उन्मुक्तता, लचीलापन, संगीतात्मकता, सामूहिकता, आर्थिक न्याय में कमी आदि ने नुक्कड़ नाटकों को और अधिक लोकप्रिय बनाया। हिंदी के नुक्कड़ नाटक निश्चित तौर पर इप्टा की प्रगतिशील विचारधारा एवं वामपंथी राजनीतिक साहित्यिक विचारधारा से ग्रहण रूप से संबंध रहे हैं। नुक्कड़ नाटकों में समसामयिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक मुद्दों पर आधारित नाटकों का मंचन के लिए वरीयता दी जाती रही। नाटक एवं जनता के बीच की दूरी को समाप्त करने में नुक्कड़ नाटक टोलियाँ वर्षों से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। एक और प्रेमचंद एवं अन्य लेखकों की कहानियाँ नुक्कड़ मंच का मुख्य केंद्र बन गई, दूसरी और कोई प्रतिबध नाटककार भी नाट्य लेखन करते रहे। गुरुशरण सिंह, सफदर हाशमी, राधा कृष्ण सहाय, विभु कुमार आदि के अतिरिक्त कई नए नाटककार भी इस दिशा में सक्रिय हुए। दरअसल नुक्कड़ मंच सामाजिकता एवं राजनीतिक साझीदारी और दायित्व की बात उठाता है। उसका दर्शक समूह, सड़क चलते लोग, दफ्तरों कारखानों से निकले कर्मचारी, मजदूर, विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी आदि होते हैं। यह 30 से 40 मिनट में जानी-पहचानी घटनाएं एवं स्थितियों के कई तनावपूर्ण पहलुओं को उजागर करके दर्शक को उकसाना और प्रेरित करना चाहता है। उसकी भाषा, उसके छोटे – छोटे दृश्य, तीव्रता, प्रखरता, प्रत्यक्ष साझेदारी, गीत – संगीत, एक्शन, व्यंग्य एवं वक्रोक्ति, प्रभावशाली संवाद आदि मौलिकता के आधार है। लोक नाटकों की तरह लचीलापन और परिवर्तनशीलता इसकी खासियत है। दिल्ली में नुक्कड़ नाटक को लोकप्रिय बनाने में 'सफदर हाशमी' की भूमिका अविस्मरणीय मानी जाती है। भारत के लगभग सभी प्रमुख शहरों कि अपनी-अपनी नुक्कड़ टोलियां है, और आज भी यह जनता एवं नाटक के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी के रुप में सतत क्रियाशील है।

हिंदी रंगमंच के विकास में लोक नाट्य शैली एवं शास्त्रीय शैलियों के प्रयोग।

जब हिंदी रंगमंच पश्चिमी रंग प्रयोगों और शैलियों से उठ चुका था तो हिंदी की अपनी स्वाभाविक सांस्कृतिक प्रकृति के अनुरूप रंगमंच का अन्वेषण करने के प्रयासों में 1976 से 1977 के आसपास एक अलग

किस्म की सक्रियता दिखाई पड़ी। इसी समय सर्वेश्वर के 'बकरी' और मणि मधुकर के 'दुलारी बाई' जैसे नाटकों के देश के कोने – कोने में नौटंकी, ख्याल जैसे लोकनाट्य रूपों में और साथ ही पारसी रंगमंच एवं आधुनिक रंगमंच के प्रयोग में सैकड़ों मंचन हुए उनका उपयोग नाटक प्रशिक्षण शिविरों के लिए भी हुआ और बड़े-बड़े समारोह के लिए भी। राष्ट्रीय फलक पर हबीब तनवीर छत्तीसगढ़ी लोकनाटय रूपों का आधुनिक संदर्भ में सृजनात्मक उपयोग अपने 'चरणदास चोर' जैसे नाटक कर रहे थे। इसी दौरान में 'ब.व.क्रांत' ने दक्षिण की यक्षगान शैली के बहुत ही सार्थक प्रयोग 'अंधेर नगरी' एवं 'हयवदन' में किए। बंसी कौर, रतन थिय्याम ने भी नौटंकी एवं मणिपुर, असम की लोक नाट्य शैलियों का प्रयोग किया। दूसरी तरफ संगीत नाटक अकादमी ने भी अपने उत्सवों में लोक नाट्य रूपों में के प्रयोग को प्रोत्साहित करना शुरू किया।

रंगमंच के नए मुहावरों एवं शैलियों की तलाश

किसी भी अच्छे रंगमंच के विकासमान रहने के लिए शिल्प उपकरणों एवं आधुनिकता आवश्यक है , किंतु यह भी सही है कि श्रेष्ठ रंगमंच की पहचान व स्थायित्व अपनी मौलिकता अपने संस्कारों विरासत एवं जीवन दर्शन से बनती है। आधुनिक रंगमंच भी चाहे वह ब्रेकअप का हो चाहे गॉष्टावस्की का चाहे बादल सरकार का हो चाहे अन्य किसी प्रतिष्ठित निर्देशकों का.वस्तुतः वह अभिनेता की शक्ति में ही विश्वास रखता है। बाह्य उपकरणों में नहीं भरतमुनि का नाट्यशास्त्र में भी यही दृष्टि प्रस्तावित है। 1980 के आसपास से हिंदी नाटक एवं रंगमंच सारी जटिलताओं, विसंगतियों के बावजूद अधिक सार्थक प्रासंगिक जीवंत एवम मौलिक और साथ ही भारतीय मुहावरे की तलाश करने लगे. सुरेंद्र वर्मा के प्रयोगशील नाटक भारतीय रंगमंच की अवधारणा के निकट आते प्रतीत हुए 'अनामिका' द्वारा नाट्यशास्त्र पर संवादरतन थियम द्वारा मणिपुरी शैली में 'अंधा युग' का प्रस्तुतीकरण सिद्ध करता है कि भारतीय रंगमंच अपने को एक और लोक शैलियों से, तो दूसरी ओर शास्त्रीय शैलियों से जोड़कर हिंदी रंगमंच को लगातार नवीनीकृत एवं प्रसांगिक बनाने हेतु संघर्षरत रहा है।

- **सन्दर्भ:**

1. **स्वतन्त्र्योर हिंदी नाटक , डॉ. रामजन्म शर्मा**
2. https://www.hindivibhag.com/rangmanch-prkaash-nepathy-manch/
3. Sharma, M. (2018, November). हिंदी नाट्यक्रमों का विकास एवं उसमें आये बदलावों का अध्ययन.
4. *Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education*, *15* (11).
5. https://doi.org/10.29070/JASRAE